Indian J. Soc. & Pol. 11 (01): 135-138: 2024 **ISSN : 2348-0084 (PRINT)**
(July-December 2023), 29 February 2024 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

जैन दर्शन तथा वर्तमान युग में इसकी प्रासंगिकता

श्रीमती सर्वेश[1]

[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, सीतापुर, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

जैन–दर्शन भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम दर्शनों में से एक है। जैन दर्शन का उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रन्थ 'पद्मपुराण' तथा 'ऋग्वेद' में भी मिलता है। प्राचीन समय में इस धर्म को 'अर्हत्' तथा 'श्रमण धर्म' के नाम से भी जाना जाता था। इसके संस्थापकों को तीर्थंकर कहा जाता है, जो इस माया रूपी संसार को पार करने का मार्ग बताते हैं। इसके प्रवर्तक आदि–तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। जैन दर्शन एक अनीश्वरवादी दर्शन है, जो वेदों में आस्था नहीं रखता है तथा ईश्वर की सत्ता का निषेध करता है। यह दर्शन मानता है कि यह समग्र संसार सात तत्वों से मिलकर बना है अर्थात् इस सृष्टि का सृजन किसी ईश्वर के द्वारा नहीं किया गया है। ब्रह्माण्ड तथा उसके सभी पदार्थ शाश्वत हैं और ब्रह्माण्ड स्वयं के ब्रह्माण्डीय नियमों के द्वारा संचालित होता है। 'पंच महाव्रत' इस दर्शन की आधारशिला हैं और इनका पालन करना जैन मुनियों व साधुओं के लिए अनिवार्य है। जैन दर्शन में 'त्रिरत्नों' को मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया गया है। 'अनेकान्तवाद' तथा 'स्यादवाद' जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त हैं। ये सिद्धान्त विश्व के विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोंणों तथा विचारों में समन्वय स्थापित करने का कार्य करते हैं।

KEYWORDS: *तीर्थंकर, पंचमहाव्रत, अर्हत्, त्रिरत्न, अनेकान्तवाद, स्यादवाद।*

धर्म और दर्शन मनुष्य जीवन के दो अभिन्न अंग हैं। जब मानव चिन्तन के सागर में गहराई से उतरता है, तब दर्शन का जन्म होता है तथा जब वह उस दर्शन को जीवन में प्रयोग में लाता है, तब धर्म का उद्भव होता है। मानव मन की उलझन को सुलझाने तथा उसकी जीवन, जगत, आत्मा के सम्बन्ध में उत्सुकता को शान्त करने के लिए धर्म और दर्शन अनिवार्य साधन हैं। इन्हीं मानवीय स्वाभाविक जिज्ञासाओं के फलस्वरूप भारत में अनेक दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें से 'जैन दर्शन' भी एक है। 'जैन दर्शन' विशुद्ध मानवता पर टिका भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम दर्शनों में से एक है। पद्म पुराण में 'अर्हत् धर्म' को सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा गया है। ऋग्वेद में ऋषभदेव, अजीतनाथ एवं 22वें तीर्थंकर अरिस्टनेमि के नामों का उल्लेख मिलता है, जिससे इस दर्शन की प्राचीनता प्रमाणित होती है।सम्पूर्ण भारत में जैन अवशेषों का प्राप्त होना प्राचीन भारत में 'जैन दर्शन' के प्रभाव को दर्शाता है। प्राचीनकाल में इस दर्शन को अर्हत्, श्रमण धर्म तथा निग्रन्थ नाम से भी जाना जाता था परन्तु महावीर युग से इसे जैन धर्म के नाम से जाना जाने लगा। इसके आदि तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने जैन दर्शन का अत्यधिक प्रचार व प्रसार किया। इसीलिए लोग इन्हें ही इसका प्रर्वतक मानते हैं। जैन दर्शन की दो शाखाएं हैं–'श्वेताम्बर' व 'दिगम्बर'। श्वेताम्बर व दिगम्बर सम्प्रदायों के दार्शनिक विचार समान है परन्तु आचार संहिता में कुछ भेद परिलक्षित होते हैं।

'जैन' शब्द की उत्पत्ति 'जिन' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है–'विजेता', जितेन्द्रिय अथवा इन्द्रियों को जीतने वाला तथा संसार के मोहरूप रणक्षेत्र में विजय प्राप्त करने वाला। जैन धर्म जिनेन्द्र का धर्म है, जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, वश में कर लिया है, वही जिनेन्द्र है। जैन धर्म के संस्थापकों को 'तीर्थंकर' कहा जाता है, क्योंकि वे इस मोहमाया रूपी संसार की नदी को पार करने का मार्ग बताते हैं। जैन दर्शन जीवन के कल्याण का, मोक्ष को प्राप्त करने का एक मार्ग है। यह वह दर्शन है, जो इंसान के प्रति ही नहीं अपितु कीड़े–मकोड़ों आदि के प्रति भी अपनत्व का भाव दर्शाता है। यह दर्शन मनुष्य को चिंतन करवाता है कि तू कहां से आया है, तुझे क्या करना है और क्या नहीं करना है। जैन दर्शन ही आत्मा को परमात्मा बनाने का मार्ग बताता है। जैन दर्शन ईसा के बाद 82 ईसवी में दो सम्प्रदायों–श्वेताम्बर व दिगम्बर में विभाजित हो गया। दिगम्बरपंथी मानते हैं कि केवली व पूर्ण ज्ञानी संत वे हैं, जो बिना भोजन के जीवन निर्वाह करते हैं और वह साधु जो कुछ भी सम्पत्ति अपने पास रखता है, जिसमें वस्त्र धारण करना भी आ जाता है, निर्वाण व मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता तथा कोई स्त्री मोक्ष अधिकारिणी नहीं है। दिगम्बर महावीर तीर्थंकर को भी निर्वस्त्र व बिना किसी श्रृंगार के ही प्रस्तुत करते हैं, जिनकी दृष्टि नीचे की ओर है, उनके अनुसार वर्द्धमान आजन्म ब्रह्मचारी थे। इनके अपने कोई प्रमाणिक ग्रन्थ नहीं हैं तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रमाणिक ग्रन्थों को अस्वीकार करते हैं।

महावीर स्वामी ने 23 तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के केवल प्रवर्तक व व्याख्याकार के रूप में अपने आपको प्रस्तुत किया है। वह किसी नये मत के संस्थापक नहीं थे, अपितु पूर्व से विद्यमान पार्श्वनाथ के मत के सुधारक मात्र थे। महावीर स्वामी ने चार व्रतों में पांचवा 'ब्रह्मचर्य व्रत' जोड़ा तथा जो कुछ जैन धर्म में रूढ़ियां थी, उन्हें दूर करके जैन दर्शन को उन्नत बनाने का कार्य किया।

कर्मवाद सिद्धान्त 'कर्मवाद का सिद्धान्त' जैन दर्शन की विश्व को एक अपूर्व और अलौकिक देन है। जीवन के विघ्न, बाधा, दुख और विपत्तियों में कर्मवाद का सिद्धान्त ही सही मार्ग प्रशस्त कर सकता है। उसका प्रथम उद्घोष है–अप्पा कत्ता विकताय सुहाणय दोहाणय'। अर्थात् आत्मा अपने सुख दुख की कर्ता एवं विकर्ता है।

1: Corresponding Author

आत्मा स्वयं जो अच्छे बुरे कर्म करती है, वह उन्हीं का फल भोगती है। सुख, दुख उसी के किये हुए कर्मों का फल हैं। कोई भी बाहरी शक्ति किसी भी जीव को सुख, दुख नहीं दे सकती, वह तो सिर्फ निमित्त मात्र बन सकती है। कर्म स्वातन्त्रय को स्वीकार करके अपने जीवन का निर्माता एवं विघटनकर्ता स्वयं आत्मा को ही माना है। जैन दर्शन ने सशक्त स्वर में आत्म–कर्तृत्व की स्वतंत्रता का प्रतिपादन करते हुए कर्म–सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया है। यह कर्म–सिद्धान्त सर्वथा मौलिक एवं वैज्ञानिक है।

अनेकान्तवाद 'अनेकान्तवाद' जैन दर्शन की चिन्तन–धारा का मूल श्रोत है। जैन वांगमय का एक भी वाक्य ऐसा नहीं है, जिसमें अनेकान्तवाद का प्राण तत्व न रहा हो। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने अपने 'सन्मति प्रकरण' ग्रन्थ में अनेकान्तवाद को त्रिभुवन का, अखिल ब्रह्माण्ड का गुरू कहा है। जैन दर्शन का चरम विकास 'अनेकान्तवाद' एवं 'स्याद्वाद' में हुआ है। अनेकान्तवाद का प्रतिपादक वाद 'स्याद्वाद' कहलाता है। 'स्यादवाद्' पद में दो शब्द हैं–स्यात् और वाद। स्याद्वाद पद का अर्थ है सापेक्ष सिद्धान्त, अपेक्षावाद या वह सिद्धान्त जो विविध दृष्टि बिन्दुओं से वस्तु तत्व का निरीक्षण परीक्षण करता है। स्यादवाद संदेहवाद नहीं है, क्योंकि यह ज्ञान की सम्भावना पर नहीं अपितु पूर्ण ज्ञान की सम्भावना पर संदेह करता है। इसके अनुसार प्रत्येक वस्तु 'सत्' भी है और 'असत' भी। जैसे दूध दूध के रूप में 'सत्' है और दही के रूप में 'असत' है। अतः स्यादवाद 'ज्ञान की सापेक्षता का सिद्धान्त' है।**यह** सर्वविदित सत्य है कि प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। उसके असंख्य पहलू हैं। ऐसी परिस्थिति में किसी एक शब्द द्वारा किसी एक धर्म के कथन से वस्तु का समग्र स्वरूप प्रतिपादित नहीं होता। तब समग्र स्वरूप के प्रमाणिक प्रतिपादन के लिए एक ही मार्ग है कि वस्तु के किसी एक धर्म को मुख्य रूप से कहा जाए और शेष धर्मों को गौड़ रूप में स्वीकार किया जाए। वस्तुतः अनेकान्त दृष्टि विराट वस्तु तत्व को जानने का यही मार्ग अपनाती है, जो विवक्षित धर्म को जानकर भी अन्य धर्मों का निषेध नहीं करती वरन् उन्हें गौण या अविवक्षित कर देती है। इस प्रकार अनेकान्तवाद द्वारा वस्तु का कोई भी अंश नहीं छूटता है। मुख्य गौण भाव से वस्तु का संपूर्ण विवेचन हो जाता है। इस प्रकार वस्तु को भिन्न–भिन्न दृष्टिकोंणों से देखना अनेकान्तवाद है। अतः अनेकान्तवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके जैन दर्शन में जीवों के ज्ञान की सीमाओं को प्रकट करके उनमें सत्यांश को स्वीकार किया है। अतः अनेकान्तवाद व्यवहार का सिद्धान्त है। समन्वय और सत्य की विवक्षा का सिद्धान्त है। इस प्रकार अनेकान्तवाद विभिन्न प्रकार के विचारों में समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है।

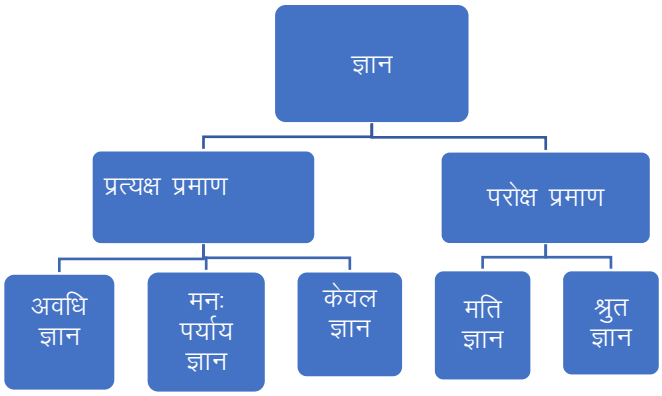

तत्व–मीमान्सा जैन दर्शन में 'जड़' और 'चेतन' दोनों तत्वों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। जैन दर्शन ने लोक में समस्त पदार्थों को द्रव्यानुसार छः वर्गों में विभाजित किया है–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन छः द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य शेष से पूर्णतः भिन्न है और उसकी स्वतंत्र सत्ता है। यह समग्र चराचर लोक तथा संसार इन्हीं 'षठद्रव्यों का प्रपंच' है। इन्हीं तत्वों से जगत् की समस्त वस्तुओं का निर्माण होता है। द्रव्य नित्य है, अतएव लोक भी नित्य है।

उसका किसी भी भौतिक लोकोत्तर शक्ति द्वारा निर्माण नहीं किया गया है अर्थात् सृष्टि का सृजन किसी ईश्वर के द्वारा नहीं हुआ है। यह दर्शन मानता है कि जगत् शाश्वत रूप में विद्यमान है और अपने ही अन्दर निहित नियमों के द्वारा संचालित होता है। इसी कारण जैन धर्म अनेक परमात्माओं (मुक्त आत्माओं) की सत्ता स्वीकार करता हुआ भी उन्हे सृष्टिकर्ता नहीं मानता। अतः तत्व ज्ञान की दृष्टि से जैन दर्शन सृष्टि का निर्माण जड़तत्व एवं अनेक आत्माओं के संयोग से स्वीकार करता है।

ज्ञान–मीमान्सा ज्ञान–मीमान्सा की दृष्टि से यह दर्शन 'सापेक्षवादी' है। इसी को अनेकान्तवादी भी कहते हैं। अर्थात् इस दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म हैं। 'अनेका धर्म कं वस्तुः' प्रत्येक वस्तु में सकारात्मक व नकारात्मक असंख्य गुण होते हैं। अतः उस वस्तु को उसके निरपेक्ष रूप में मानव की इन्द्रियों व बुद्धि द्वारा जान लेना असंभव है। स्यादवाद इसी सिद्धान्त पर आधारित है। अतः जैन मत में साधारण मानवीय ज्ञान के द्वारा निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। निरपेक्ष ज्ञान के लिए अनुभवात्मक ज्ञान के परे जाकर साधना के माध्यम से प्रयास करना पड़ता है। जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान दो प्रकार का होता है– 1. यथार्थ ज्ञान या प्रमाण 2. अथार्थ ज्ञान या मिथ्या ज्ञान। सम्यक् निर्णायक ज्ञान यथार्थ ज्ञान होता है, जिस ज्ञान में संशय, विपर्याय न हो वह ज्ञान दार्शनिक दृष्टिकोंण से यथार्थ ज्ञान माना जाता है। इसके विपरीत जो ज्ञान संशय, विपर्याय आदि समारोपों से युक्त हो, सर्प को रस्सी समझने के समान विपरीत बोधरूप हो या अनिर्णायक हो उसे दार्शनिक दृष्टि से अयथार्थ ज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान कहते हैं। 'सम्यक ज्ञानात्मक पत्र प्रमाणमुपवर्णितम्'। अर्थात् समीचीन ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, जो वस्तु जैसी है, उसको वैसे ही जानना प्रमाण है। उमा स्वाती ने पांच ज्ञानों (पंचज्ञान) को दो प्रमाणों में विभक्त किया है। प्रथम के तीन ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं और शेष दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं। जैन दार्शनिकों ने अपने विवेचन में प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रमाणों को स्वीकार करके जैन दृष्टि से उनका मौलिक व विशिष्ट विवेचन किया है। इस दर्शन के अनुसार ज्ञान के दो प्राप्त रूप हैं–'प्रमाण' और 'नय'। प्रमाण के द्वारा वस्तु का यथारूप वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त होता है जैन मतानुसार वस्तु के अनेक

गुणधर्म हैं। उसे जानने के लिए अनन्त दृष्टिकोंण हैं, उनमें 'नय' आंशिक दृष्टिकोंण हैं। नय वह दृष्टिकोंण है, जिससे कोई वस्तु सभी मनुष्यों को भिन्न–भिन्न दिखाई देती है। किसी स्थान व काल विशेष के संदर्भ में दिया गया कोई मत 'नय' कहलाता है। इस प्रकार सत्य के एक अंश को ग्रहण करने वाला ज्ञान ही नय है। नयों द्वारा प्रदर्शित सत्यांश और प्रमाण द्वारा प्रदर्शित अखण्ड सत्य मिलकर ही वस्तु के वास्तविक और सम्पूर्ण स्वरूप के बोधक होते हैं। किसी विषय के यथार्थ ज्ञान के लिए प्रमाण व नय दोनों की आवश्यकता होती है।

आचार–मीमान्सा

'आचार–मीमान्सा' जैन दर्शन की महत्वपूर्ण देन है। जैन धर्म नीति में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह आदि का मर्म बताया गया है। इसमें श्रवण और श्रावक के धर्मपूर्ण और नीतिपूर्ण आचरण के संबंध में बताया गया है। श्रमणों को महाव्रतों का पालन कठोरता से करने की अनिवार्यता की गयी है जबकि श्रावकों को अणुव्रतों का पालन करने के लिए कहा गया है। जैन आचार्य, उपाध्याय और साधू तीनों के लिए अलग–अलग कर्तव्य बताये गये हैं। 'आचार्य' का कार्य अनुशासन बनाना, उपदेश देना तथा मुमुक्षों का चरित्र निर्माण करना है। आचार्य को सभी तरह के महाव्रतों का पालन करना होता है। समाजसम्मत व धर्मसम्मत आचारण करना होता है। 'उपाध्याय' का कार्य साधू कर्म के साथ–साथ जैन शास्त्रों का पठन पाठन करना है। जो उपर्युक्त गुणों का पालन करता हुआ ज्ञान ध्यान में लीन रहता है, वह 'साधू' है। जैन आगमों में साधू का सम्पूर्ण विवेचन करने के लिए उसके 27 गुण बताये गये हैं, जिनमें 25 भावनाओं के साथ पंच–महाव्रतों का पालन करना, विषयों से निवृत्ति, चार कसायों से निवृत्ति, मन को वश में करके धर्म मार्ग में लगाना, मन, कर्म, वचन की सत्यता, ज्ञान सम्पन्न होना, क्षमायुक्त होना, वैराग्यवान होना, क्षुधा, तृष्णा को समभाव से सहन करना, मृत्यु के समय पर भी भयभीत न होना। इस प्रकार जैन मुनियों को अपने कर्तव्यों के अनुसार ही जीवनयापन करना होता हैं।

महाव्रत

जैन धर्म की आधारशिला महाव्रत है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह पांच महाव्रत कहे गये हैं। महाव्रतों का पालन और उनका निरन्तर अनुशीलन श्रमण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जैन मुनि व साधुओं के लिए पंच महाव्रतों का पालन अनिवार्य है जबकि गृहस्थों के लिए अणुव्रतों का पालन करने का विधान है। 'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसा को इस दर्शन का केन्द्र बिन्दु माना जाता है और इसकी रक्षा के लिए ही चार अन्य व्रत बताए गये हैं। इस दर्शन के अनुसार सभी जीवों को अत्यधिक जीने की लालसा होती है। इसी कारण हमें किसी भी जीव की हत्या नहीं करनी चाहिए। इन महाव्रतों की रक्षा के लिए गुप्ति और पांच समिति का निरूपण किया गया है। कायक, वाचिक तथा मानसिक क्रिया का सभी प्रकार से निग्रह करना 'गुप्ति' है। 'गुप्ति' में अति क्रिया का निषेध तथा समिति में सत् क्रिया का प्रवर्तन मुख्य है।

त्रिरत्न

'सम्यक दर्शन ज्ञान चारित्राणी मोक्ष मागाः।''जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के प्रमुख साधन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चरित्र बताये गये हैं। इन्हें 'त्रिरत्न' कहा गया है। इन्हीं त्रिरत्नों के द्वारा कर्म आवरण के क्षीण हो जाने पर जैनत्व की प्राप्ति होती है। जीव, अजीव आदि तत्वों में श्रद्धा रखना सम्यक् दर्शन कहलाता है। कुछ जैनाचार्यों का मत है कि जिन के द्वारा कहे गये तत्वों में रूचि होना सम्यक दर्शन है संशय, भ्रम व अनिश्चय से रहित जीव व अजीव पदार्थों का ज्ञान, जो जिस रूप में है, उसी रूप में उसका ज्ञान होना सम्यक् ज्ञान है। भव–बन्धन में बांधे रहने वाले समस्त कर्मों का परित्याग कर देना सम्यक् चरित्र है। राग, द्वेष, क्रोध, मोह आदि दुर्गुणों के परित्याग के लिए जो आचरण किया जाता है, उसे सम्यक् चरित्र कहते हैं। महावीर स्वामी के अनुसार सम्यक् चरित्र के द्वारा ही मनुष्य कर्म–बंधनों से मुक्त होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। महावीर स्वामी का सारा आचारशास्त्र इन्हीं त्रिरत्नों पर आधारित है।

प्रासंगिकता

आज सम्पूर्ण विश्व, युद्ध, हिंसा एवं साम्प्रदायिक दंगों, उपद्रवों की विभीषिका से घिरा हुआ है। रूस व यूक्रेन के बीच युद्ध, इजराइल व फिलीस्तीन के बीच संघर्ष, अफगानिस्तान का आन्तरिक संघर्ष तथा विश्व में अनेक देशों में हो रही आतंकवादी गतिविधियां/हमले इस बात का प्रमाण है कि लोगों में स्वार्थ, लोभ, अशांति, संदेह, अविश्वास की भावना कितनी बढ़ चुकी है। मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन बना हुआ है। धर्म के नाम पर कट्टरता, अराजकता, आतंकवाद तथा कर्म के नाम पर हिंसा, छल, कपट, धोखा दिखाई देता है। समाज के कुछ लोग मर्यादा का परित्याग कर स्वच्छन्दता व उदण्डता को अपनाकर असमाजिक बन गये हैं। व्यक्ति स्वार्थलोलुप, आचरणहीन, संस्कार विहीन होता जा रहा है। उसकी स्वकेन्द्रण की भावना ने भाई–भतीजावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद को जन्म दिया है।

वर्तमान युग की इन सभी ज्वलन्त समस्याओं के निराकरण हेतु जैन आचारशास्त्र की महती आवश्यकता है। सम्यक ज्ञान, दर्शन, चरित्र, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य आदि वर्तमान परिवेश में सर्वाधिक प्रासंगिक हैं। अतः आज जैन नीतिशास्त्र के विचारों एवं उद्देश्यों को आत्मसात् करने की आवश्यकता है। जैन दर्शन विश्व को निवृत्तिमूलक जीवन शैली प्रदान करता है। संतुलित जीवन जीने की कला जैन दर्शन की प्रमुख देन है। अहिंसा व अपरिग्रह का सन्देश देता है। समानता, आत्मपुरूषार्थ, सर्वोदय, कर्मवाद, आत्मस्वातंत्रय जैसे मानवीय सिद्धान्तों की पुनर्स्थापना की है। इस दर्शन ने पूर्ण अहिंसक विचार, शाकाहार व विहार को जन्म दिया है। संवेदना पर नियंत्रण कर ज्ञान का विकास करना, जैन दर्शन की अहम विशेषता है।

कर्मवाद का सिद्धान्त मानव को निराशा से बचाता है। दुख सहने की शक्ति देता है और मन को शान्त एवं स्थिर रखकर प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति प्रदान करता है। यह सिद्धान्त मानव को अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थिति में ध्रुव की तरह अटल रहने की प्रेरणा देता है। मन में से 'श्वानवृत्ति' को हटाकर 'सिंहवृत्ति' जागृत करता है। इस प्रकार जैन दर्शन का कर्मवाद सिद्धान्त अद्भुत, अन्नय और अपराजेय है। इस वैज्ञानिक युग में भी यह एक चिरंतन ज्योति के रूप में मानव मात्र के पथ को आलोकित कर सकता है।

स्यादवाद का सिद्धान्त सम्पूर्ण मानव समाज के समस्त सैद्धान्तिक विवादों को शान्त करता है। स्यादवाद के अनुसार किसी वस्तु के सम्बन्ध में जो कथन किया जा रहा है, वह किसी एक दृष्टिकोंण से किया जा रहा है। उस वस्तु के सम्बन्ध में अन्य दृष्टिकोंणों से भी कथन किया जा सकता है। इस सिद्धान्त को मान लेने से विश्व के सभी विवादों का समाधान किया जा सकता है। जैनदर्शन सापेक्षवाद छात्रों में लोकतांत्रिक मनोवृत्ति का विकास करने में सहायक है अर्थात् दूसरे के विचारों को सुनना, समझना तथा वैभव को सहिष्णुता से स्वीकार करना। जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित धर्म, समाज व्यवस्था आदियुगों के बाद आज भी उपयोगी और प्रासंगिक है। मानव सभ्यता के विकासक्रम में वैज्ञानिक युग के इस दौर ने भौतिक विकास की चरम सीमाओं को छू लिया है। मानव अंतरिक्ष तक पहुंच गया है। विज्ञान ने ऐसी ऐसी खोजें की हैं कि मनुष्य एक स्थान पर बैठकर सारे विश्व को जान सकता है, कम समय में लम्बी दूरियां तय कर सकता है, लेकिन इन भौतिक उपकरणों के विकास ने मानव की क्षमताओं को कम कर दिया है। समय और स्थान की दूरी पर विजय पाकर भी मनुष्य अपने पारस्परिक संबंधों में अधिक दूरी और तनाव महसूस करने लगा है। आज उसके चारों ओर विभिन्न प्रकार की समस्याएं चुनौती बनकर कर खड़ी हैं। विभिन्न आर्थिक और राजनीतिक चिन्तकों ने जो विचार दिये हैं, उससे लौकिक समृद्धि का क्षितिज तो विस्तृत हुआ है, लेकिन आत्मिक शान्ति संकुचित हो गयी है। जीवन अधिक अशान्त और कुठित हो गया है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के जीवन में शान्ति, सुख और संतुष्टि लाने के लिए जैन दर्शन मार्ग प्रशस्त करता है। जैन दर्शन के सिद्धान्तों को जीवन में व्यवहार में अपनाने से जीवन स्वतः ही सहज, सरल एवं सुखमय हो जायेगा।

REFERENCES

ओड़, डॉ0 लक्ष्मी लाल के0,(2017) *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि,* जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

चौबे, आर0के0 *भारत के प्रमुख शिक्षा दर्शन'* जयपुर, प्रेमचन्द्र बाकलीबाल आविष्का पब्लिशर्स

राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (2010) *भारतीय दर्शन*

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ जैनिज्म, जैन संस्कृति कोश 1–'जैन इतिहास, संस्कृति, कला एवं पुरातत्व'

एनसाइक्लोपेडिक हिस्ट्री ऑफ इंडियन कल्चर

डागा, मीनाक्षी (2014) *जैन सस्कृति का इतिहास एवं दर्शन,* जोधपुर, राजस्थानी ग्रन्थागार

जैन डा0 हुकुम चन्द्र और डा0 नारायण लाल माली (2020) *राजस्थान का इतिहास, संस्कृति, परम्परा एवं विरासत?* जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

मोहनचन्द्र, *जैन संस्कृत महाकाव्यों में भारतीय समाज*

जैन, कामता प्रसाद, *हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास,* काशी, भारतीय ज्ञानपीठ